P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-3* ISSUE-4*(Supplementary Issue) July- 2018
E: ISSN NO.: 2455-0817 *Remarking An Analisation*

अस्मिता तलाशती नारी

सारांश

आज जब नारी घर की दहलीज लांघकर पुरूष के समकक्ष प्रत्येक क्षेत्र में अपनी क्षमता की उपस्थिति दर्ज कर रही है, ऐसे में पुरूष, समाज साहित्य और मीडिया सभी अपने–अपने ढंग से नारी चेतना की अभिव्यक्ति करने में लगे हैं। विभिन्न आन्दोलनो, क्रान्तियों, संगठनों की पहल के कारण समाज में नारी के प्रति जहॉ एक ओर जागरूकता बढ़ी है वहीं दूसरी ओर परिवार में भी नारी के घर के द्वार को पार कर पुरूष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलने की प्रवृत्ति को भी स्वीकार किया है। यहॉ तक कि भारतीय समाज और संस्कृति पश्चिम की उन्मुक्त नारी चेतना से विमुख नहीं रह सकी। वह पश्चिम की इस दौड़ में जहॉ एक ओर शामिल हुई वहॉ दूसरी ओर पुरूष वर्ग उसे परम्परागत वहीं दयनीय स्थिति की अनुभूति कराकर आज भी उस पर हावी होने का प्रयास कर रहा है। परन्तु समाज में बदलती परिस्थितियों के बीच प्राचीन समय से चली आ रही नारी के प्रति पुरूष वर्ग का आक्रोश आज भी नारी प्रताड़ना का केन्द्र विन्दु बना हुआ है। परिणाम स्वरूप नारी अपनी जाति विडम्बनाओं, खामियों एवं खूबियों को अनूठी अभिव्यंजनात्मक एवं अधिकार की भाषा में पेश कर रही है। आज नारी सृजन, नारी संघर्ष का नया इतिहास बन रहा है।

सन्दीपना शर्मा
सहायक अध्यापक,
हिन्दी विभाग,
डी. ए. वी. कालेज,
जालन्धर

मुख्य शब्द : नारी अस्मिता, पारिवारिक जीवन।

प्रस्तावना

प्राचीन काल में भले ही समाज मातृसत्तात्मक रहा हो किन्तु उसके बाद बदलाव आया है वह बदलाव आज 21वीं सदी के प्रथम चरण में विद्यमान है। समाज आज भी पुरूष प्रधान ही है, नारी का अपनी अस्मिता के लिए संघर्ष जारी है, स्त्रियों का यह संघर्ष विकास के दो सोपानों में बांटकर देखा जा सकता है। एक मुख्य रूप से सुधारवादी आंदोलन था जो बाल–विवाह, सती प्रथा, दहेज प्रथा आदि के विरोध में और स्त्री शिक्षा, विधवा विवाह के पक्ष में चल रहा था। दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द, राजा राम मोहन राय, रवीन्द्र नाथ टैगोर आदि मुख्य रूप से आर्य समाज और ब्रह्म समाज के मंच से बहुत बड़ी सामाजिक जागृति की आधार शिला बने। दूसरे सोपान के अन्तर्गत आज की शिक्षित नारी प्रत्येक क्षेत्र में सक्रिया भूमिका निभा रही है। शिक्षा, चिकित्सा, विज्ञान, कला, साहित्य, पर्वतारोहण, पुलिस सेना आदि कोई भी क्षेत्र नारी की पहुंच से दूर नहीं है– ''किन्तु इस पुरुष प्रधान समाज में अब भी नारी को बराबर का दर्जा देने में सुगबुगाहट है। यही नहीं समाज की रूढ़िवादी, परम्परावादी एवं कम पढ़ी–लिखी नारियों के विचारों में कुछ विशेष परिवर्तन आज भी नहीं आया है।''[1]

अध्ययन का उद्देश्य

1. राजनीतिक दृष्टिकोंण में लड़का–लड़की को घर, समाज, शिक्षण संस्थाओं में प्रदत्त शिक्षा श्रेष्ठ नागरिक बनने की दिशा में निर्देशित होनी चाहिए।
2. आर्थिक जीवन में वशता कायम करने हेतु परिवार में पिता की सम्पत्ति का आधा हिस्सा स्वतः मिलना चाहिए।
3. पारिवारिक जीवन में विवाह के उपरान्त स्त्री–पुरूष के सम्बन्धों में मित्रता का भाव निहित होना चाहिए।
4. सामाजिक दृष्टि से नारी का घर, समाज के सभी विवादों में निर्णयात्मक होना आपेक्षित है।
5. सांस्कृतिक जीवन में नारी की स्थिति मजबूत होनी चाहिए। ताकि हम पुत्रवती भवः के आशीर्वाद का श्रवण करने के साथ–साथ पुत्रीवती भवः का आशीर्वाद भी श्रुतिगत कर सके।
6. स्त्री सम्बन्धी दुराग्रहपूर्ण परम्परा का पालन आज तक स्त्रियॉ ही करती आयी हैं इसलिए समाज में पहले स्वयं व्यक्ति का मन इससे मुक्त होना चाहिए ताकि स्वस्थ समाज का निर्माण हो सके।

आज़ादी के 70वर्षों में हम ने एक राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, कुछेक मुख्यमंत्री और कई दर्जनों मंत्री बनने का मौका स्त्रियों को दिया। लेकिन इस कड़वी सच्चाई से भी हम परिचित हैं, ''कि अभी भी हमारे देश में अमीना बेची जाती है, भँवरी बाई, फूलन देवी आदि कई स्त्रियाँ रोज़ बेरोज़ बलात्कार का शिकार होती है। आलू चुराने के एवज़ में समस्तीपुर (बिहार) में दलित स्त्री नंगी की जाती है। प्यारी नाम की औरत को उस का पति जुए में हार जाता है और विजेता के साथ जाने से नकारने पर उस का नाक काट देता है।''[2]

आबादी के अनुपात में आज भी हमारा देश लड़कियों की शिक्षा में पिछड़ा है। शिक्षा के समान अवसर–प्रदान किए जाने के बाद भी सामाजिक व पारिवारिक दबावों के नीचे दबकर लड़कियां स्कूल जाने से प्रायः वंचित रह जाती हैं। महिलाओं में हुए सर्वेक्षण के अनुसार, ''सात वर्ष की आयु से ऊपर की 100 लड़कियों और महिलाओं में तकरीबन 61 अनपढ़ हैं इन में 40 गाँवों में तथा 20 शहरों में निवास करती हैं।''[3]

जब स्त्रियों की प्राइमरी शिक्षा ही नहीं होती तब विकास, स्वास्थ्य अपनी स्वतन्त्र सोच व अधिकार के प्रति कौन जागरुक होगा? अभी तक सरकारी, राजनीति व तकनीकी क्षेत्र में केवल 12 प्रतिशत महिलायें ही पहुंच सकी हैं जबकि 88 प्रतिशत जगहों पर पुरुष विराजमान है। तसलीमा नसरीन कहती हैं– ''मुझे लगता है कि मैं वही लड़की हूं, चार हज़ार साल पहले जिसके हाथ से वेद छीन लिया गया था। धिक्कार है उन पूर्वजों को जिन्होंने एक लड़की को गृहबंदिनी वधू बना दिया तो दूसरी को बना दिया नगर वधू। एक को देवदासी तो दूसरी को सेवादासी।''[4]

लड़कियों को जागरुक न करके हम उन्हें स्वयं छुई–मुई बना रहे हैं व संकट को आंमत्रण दे रहे हैं। समाज में लड़कियां, असुरक्षित हैं। लड़कियों के समाज को विकृत मानसिकता वाले पुरुषों से खतरा है, भले ही वह पुरुष उस का करीबी रिश्तेदार हो या पड़ोसी, सिरफिरे मन चले हों या सम्मानित विद्यालयों के गुरु जी। यदि कोई पुरुष स्त्री को शारीरिक रूप से हानि पहुंचाता है, तो सारा समाज स्त्री को ही बदनाम कर कुलटा या अपवित्र घोषित कर देता है। ऐसा प्रतीत होता है कि यौन शुचिता का सम्पूर्ण दारोमदार स्त्री के ही कंधों पर है। ऐसा क्यों होता है कि एक स्त्री स्वयं गलती न करने पर समाज में अपमानित होती है? हमें नारी के आत्म सम्मान के लिए अपनी बेटियों को लड़ना सिखाना होगा। लता शर्मा का मानना है, ''हम यौन शोषण के विरुद्ध गोलबंद हो। घर–बार, दफ्तर, सड़क कहीं भी किसी को पुरुष की दमित कुण्ठा का शिकार न होने दें। शोषित, दमित की हर सम्भव सहायता, समर्थन और सहयोग दें। अपराधी को सजा दिलवाएँ, न मिले तो स्वयं सज़ा दें। जब तक एक जुट कर हम इस बुराई का मुकाबला नहीं करते हमारी बच्चियों का शोषण होता रहेगा। हम आवाज़ उठाएं– हर कण्ठ, हर घर, हर मंच से। तब ही वह देश व्यापी स्वर बन दिगदिंगत में गूँजेगा और युगों–युगों से सुप्त पड़ी चेतना को झकझोरेगा।''[5]

लेकिन आज की नारी यौन–स्वातंत्र्य केवल पुरुषों का ही अधिकारी नहीं मानती। पुरुष का अपनी पत्नी के अतिरिक्त अन्य स्त्रियों के साथ यौन सम्बन्ध स्थापित करना कोई अनिष्ट की बात नहीं है। आज की सजग नारी ने पुरुषों की इस पुरातन विचार धारा को तोड़ दिया है। कहा जा सकता है कि स्त्री को शिक्षा से हीन करके ही इस जड़ स्थिति में लाया गया था, जिस दिन उस ने शिक्षा के प्रकाश को जाना उसी दिन से इस स्थिति का विरोध आरम्भ हो गया। 21वीं सदी की पूर्व संध्या का धूमिल वातावरण इस षडयन्त्र और उस के विरोध का ही परिणाम है। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि स्वयं स्त्री ने यौनशुचिता के इस खोखलेपन को नकार दिया है अन्यथा, बलात्कृत होने के बाद कितनों ने कुएँ, बावडियों की शरण ली, कितनों ने जीवन की अपेक्षा फाँसी के फंदे को अपनाया, इन आंकड़ों का विश्लेषण इस सत्य को स्पष्ट करता है कि स्त्री सम्बन्धी इस दुराग्रहपूर्ण परम्परा का पालन आज तक स्त्रियाँ ही करती आई हैं। इसलिए समाज में पहले स्वयं व्यक्ति का मन इस से मुक्त होना चाहिए ताकि स्वस्थ समाज का निर्माण हो सके।

यूरोप में 18वीं सदी में शुरू हुआ फेमिनिस्ट आंदोलन मताधिकार और काम करने की अनुकूल परिस्थितियों जैसे प्रश्नों से आरम्भ होकर धीरे–धीरे सामाजिक जीवन, विवाह–तलाक तथा व्यवहार–विचार तक बराबरी और भागीदारी तक की अनिवार्य और जायज़ मांगों से जुड़ गया। भारतीय सन्दर्भ नारीवादी आंदोलन बीसवी सदी के उत्तरार्द्ध में शूरू होता है, लेकिन इसकी धमक इस से एक सदी पहले ही एक ऐतिहासिक घटना में देखी जा सकती है सुधीर चन्द्र की पुस्तक 'रख्माबाईः स्त्री अधिकार और कानून' इस महत्त्वपूर्ण घटना का जीवन्त दस्तावेज है। यह पुस्तक रख्माबाई की अद्भुत विद्रोह की सच्ची घटना पर आधारित है। आज से सवा सौ साल पहले एक युवती का अपने स्त्री अधिकारों को लेकर यह तेवर और साहस की वह अंग्रेजी राज के कानूनों और भारतीय समाज के ठेकेदारों को एक साथ चुनौती देती है। रख्माबाई का विवाह मात्र 11 वर्ष की उम्र में कर दिया गया था लेकिन जब वह 22 वर्ष की हुई और उस के पति ने वैवाहिक अधिकारों को पाने के लिए उसके अभिभावकों पर जोर डालना शुरू किया तो इस युवती ने अपने पति के साथ जाने से इंकार कर दिया। उस का कहना था कि वह एक ऐसे व्यक्ति को अपन तन मन नहीं सौंप सकती, जिस के प्रति ग्यारह वर्षों के अपरिणित विवाह और अलग–अलग वास के दौरान उसके मन में गहरी वितृष्णा पैदा हो गई थी। ''उस के पति दादा जी भीकाजी ने उसे सशरीर पाने और उस की सम्पति पर हक जताने हेतू 1884 में मुकद्दमा कर दिया।''[6] एक तरफ पूरा पारम्परिक समाज और साम्राज्यवादी कानून था तो दूसरी ओर ऐसी स्त्री थी, जो उस पुरुष को अपना तन, मन सौंपने से इंकार कर रही थी, जिसे वह नापसंद करती थी। पारम्परिक पुरुषवादी समाज की श्रद्वेय अधंपरम्पराओं और उस अहम् के लिए यह चोट ज़ोरदार थी।

समकालीन कथा लेखिका मैत्रेयी पुष्पा ने 'चाक' (1997) उपन्यास में स्त्री की नैतिकता को लेकर अनेक

महत्वपूर्ण प्रश्न उठाए हैं। यह उपन्यास 'बुन्देलखण्ड' के 'लोक' के स्त्रीपक्ष के यथार्थ को इस तरह प्रस्तुत करता है कि पठनीय संवेदना इस सामाजिक अन्याय के विरूद्ध तिलमिला उठती है। उत्तर भारत के एक बिछुड़े हुए गाँव की गौरी उपन्यास की नायिका, सारंग आरम्भ से अन्त तक पुरुष सत्ता का विरोध करते हुए नैतिक–सिद्धान्तों की नयी व्याख्या प्रस्तुत करती है। गांव की साधारण स्त्री होने पर भी इतने प्रभावशाली चरित्र के रूप में उभरती है कि 'चाक' बदली हुई स्त्री चेतना का प्रामाणिक दस्तावेज बन जाता है। मैत्रेयी पुष्पा के अनुसार ''मैं स्त्री–विमर्श में स्त्री देह–विमर्श घुला देती हूं तो क्या बुरा करती हूँ? यदि पति की चिता के पास खड़ी स्त्री कहे– मेरा मन पति की देह के साथ जल रहा है, और फिर सामान्य जीवन जीने लगे तो क्या उसे सती कहेंगे? जब तक कोई स्त्री पति को अपनी देह समर्पित नहीं करती, वह सती तो क्या, पत्नी भी नहीं मानी जाती। पुरुष का रिश्ता स्त्री देह से है, इस में लेश मात्र भी सन्देह नहीं और इसीलिए वह स्त्री के शरीर का नियंता बनता है।''[7]

वर्तमान समय में यह नैतिकता पुरानी नहीं, बल्कि शोषणयुक्त दिखाई देती है। स्त्री को समानता दिए जाने के बावजूद, समानता दिए जाने के सभी रास्तों को बंद करने का यह सोचा–समझा प्रयास प्रतीत होता है। पुरुष ने सदा ही अपनी पसंद की स्त्री चुनी पर अपनी पसंद दिखाने का अधिकार पुरुष कभी भी स्त्री को नहीं देता। स्त्री–पुरुष के सम्बन्धों की नैतिकता का प्रश्न दो मुद्दों को उठाता है– यौनगत शुचिता और स्त्री का एकपक्षीय समर्पण। दोनों ही मुद्दों पर होने वाला अन्याय स्त्री के ही हिस्से में आता है। पुरूष के सौ यौनगत विचलन क्षम्य है और स्त्री को भी उसे समाज में अपदस्थ करने से नहीं रोक पाता।

भारतीय समाज में प्रचलित नैतिकता धर्म शास्त्र व स्मृतियों पर आधारित है आज समय बदल गया लेकिन ये मानदण्ड नहीं बदले। समता और स्वातंत्र्य का प्रवेश इन मानदण्डों में भी होना चाहिए।

निष्कर्ष

भारतीय संस्कृति ने सदैव नारी को पूजनीय स्थान व गरिमा प्रदान की है भूमिका चाहे मातृत्व की हो या पत्नी की बहन की हो या प्रेमिका, की उसके महत्व को कभी कमतर करके नहीं आंका जा सकता है। परन्तु प्राचीनकाल से ही समाज में पुरूष की प्रधानता व उसका वर्चस्व बना रहा जिसके परिणाम स्वरूप संस्कृति की ये महान् निष्ठा व त्याग की मूर्ति, पॉव की जूती के समाज समझी जाने लगी। उसे पुरूष वसुन्धरा के स्थान पर पहले पुरूष भगिनी बाद में पुरूष भाग्या बनना पड़ा। समय के साथ–साथ पाबन्दियों के मानक उस पर कसे जाने लगे। पारिवारिक सम्मान को उसके व्यक्तिगत दायित्व का परिणाम माना जाने लगा। पाश्चात्य सभ्यता की उन्मुक्तता एवं विकासशील सोच ने पुरूष की रस लोलुपता को प्रभावित किया एवं नारी के आकर्षण व उसकी कमजोरी ने उसे केवल कमरे की सजावट व आनन्द की वस्तु बना दिया। नारी पर पुरूष की उन्मुक्तता का ऐसा असर पड़ने लगा कि वह सदैव पुरूष के समकक्ष अपनेआप को कमजोर समझने लगी और धीरे–धीरे अपनी स्वतंत्रता खो बैठी। ऐसी स्वतंत्रता जो उसे कभी प्राप्त ही नहीं हुई। उसे कभी भी पुरूष के समकक्ष दर्जा प्राप्त न हो सका। पुरूष की गलती व उसके अपराध की सजा उसे अपनी शारीरिक और सामाजिक इज्जत को गवांकर चुकानी पड़ती है लेकिन समय के साथ–साथ भारतीय जनमानस अब सचेत एवं जागरूक हुआ है नारी फिर से अपनी अस्मिता एवं स्वतंत्रता हासिल करने में जुटी है लेकिन फिर भी इस दिशा में कार्य करना शेष है। राजनीति, साहित्य, कानून व समाज मिलकर इस क्षेत्र में सहयोग करेंगे तो वह दिन दूर नहीं जब नारी अपनी अस्मिता को नहीं अपनी श्रेष्ठता को अभिव्यक्त करती नजर आयेंगी।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. *डॉ० हरिदास राज जी शेण्डे 'सुदर्शन' नारी सशक्तिकरण, प्रकाशन–ग्रन्थ विकास पृ०14.*
2. *रमणिका गुप्ता, कलम और कुदाल के बहाने, प्रकाशन, शिल्पायन पृ०9.*
3. *डॉ० हरिदास राम जी शेण्डे नारी सशक्तिकरण, प्रकाशन–ग्रन्थ विकास, पृ०44.*
4. *तसलीमा नसरीन, औरत के हक में, पृ०38.*
5. *लताशर्मा, औरत अपने लिए, सामायिक प्रकाशन पृ०39.*
6. *सुधीर चन्द्र, रख्मा बाईः स्त्री अधिकार और कानून, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।*
7. *मैत्रेयी पुष्पा, स्त्रीत्व को नैतिकता (लेख) उद्धृत नैतिकता के नये सवाल, राज किशोर पृ०139*